शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

श्रीमद्भगवदगीता, उपनिषद् एवं अद्वैत वेदांत के परिप्रेक्ष्य में अध्यात्म का निरूपण

डॉ. उमा दवे
सहायक प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र)
टी.एन.बी. कॉलेज
भागलपुर, बिहार, भारत

शोध संक्षेप

*भारतीय संस्कृति का आधार उसकी आध्यात्मिकता है और यह अध्यात्म उसके धर्म एवं दर्शन दोनों में परिलक्षित होता है। अध्यात्म शब्द में ही आत्मा छिपा हुआ है। भारतीय दर्शन में अध्यात्म से तात्पर्य ही आत्मा से है। भारतीय दर्शन का आधार है उसकी आध्यात्मिकता एवं भारतीय दर्शन ग्रंथों में यह पूर्ण रूप से छलकती है फिर चाहे उपनिषदों की बात की जाये, चाहे गीता या ब्रह्मसूत्र की। इन सभी में एवं अद्वैत वेदांत में आत्मतत्व को जानना ही जीवन की पूर्णता मानी गयी है जो मानव का वास्तविक स्वरूप है। जिस शरीर को वह **'मैं'** मानता है वह तो परिवर्तनशील एवं नश्वर है, किंतु जिसकी सत्ता से शरीर, मन, बुद्धि आदि कार्यशील रहते हैं वह सत्ता आत्मा की ही है। उस आत्मा को जानना ही मानव जीवन का परमध्येय हैए अध्यात्म है। प्रस्तुत शोधपत्र में यही दर्शाया गया है।*

भारतीय धर्म एवं दर्शन की आधारशिला उसकी आध्यात्मिकता है। यहाँ ऐहिक तथा पारलौकिक सभी विषयों पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही विचार किया जाता है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है : **'आत्मानं विद्धि'** अर्थात् अपनी आत्मा को जानना और उसका आधार है अध्यात्म। श्री अरविंद के अनुसार आध्यात्मिकता ही भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय तत्व है और इसने अपने अंतर और बाह्य दोनों ही जीवन को पूरी तरह प्रभावित किया है।[1] भारत वर्ष में दर्शन तथा धर्म का गहरा संबंध है। दैहिक, दैविक एवं भौतिक इन त्रिविध ताप से संतप्त जनता की शांति के लिए, क्लेशमय संसार से आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति करने के लिए ही भारत में दर्शनशास्त्र का आविर्भाव हुआ है। अन्य देशों में दर्शनशास्त्र तथा धर्म में पारस्पिरक संबंध का अभाव ही लक्षित होता है, किंतु भारत में दोनों का संबंध नितांत घनिष्ठ है। दर्शनशास्त्र के द्वारा सुचिंतित आध्यात्मिक तथ्यों के ऊपर ही भारतीय धर्म की प्रतिष्ठा है। **जैसा विचार वैसा आचार।** इन दोनों का सामंजस्य जितना भारतवर्ष में दृष्टिगोचर होता है, उतना अन्य किसी देश में नहीं।[2]

भारतीय दर्शन में दर्शन का अर्थ है : **'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'** अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाये वह दर्शन है। देखा किसके द्वारा जाता है ? सामान्य रूप से उत्तर होगा आँखों से देखा जाता है, किंतु दर्शन में जिससे देखने की बात होती है वह है सूक्ष्म दृष्टि से देखना, गहराई से चिंतन-मनन करना, सत्य का अनुसंधान करना और दर्शन में जिस सत्य की खोज की जाती है, उसकी सार्थकता उसके साक्षात्कार में होती है। अर्थात् आत्मसाक्षात्कार में होती है।

भारतीय षड्दर्शन में से अद्वैत वेदांत दर्शन में आत्म-साक्षात्कार का उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार जीव स्वयं की खोज करके स्वयं को आत्मरूप से अनुभव कर सकता है। यही है जीवात्मा और परमात्मा की एकता का दर्शन। जीव अपने ब्रह्म स्वरूप को पहचान कर ब्रह्म के साथ एक और अभिन्न बनता है और यही जीव का परम लक्ष्य है। यही अध्यात्म है।

अध्यात्म शब्द में ही आत्मा छिपा हुआ है। श्रीमदभगवदगीता के आठवें अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से पूछते हैं, 'किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं... अर्थात् वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? आठवें अध्याय के तीसरे श्लोक में उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि **'अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।'** अर्थात् जो अक्षय है जिसका क्षय नहीं होता, वही परब्रह्म है। **'स्वभावः अध्यात्मम् उच्यते'** स्वयं में स्थिर भाव ही अध्यात्म अर्थात् आत्मा का आधिपत्य है। इससे पहले सभी माया के आधिपत्य में रहते हैं, किंतु जब 'स्व' भाव अर्थात् स्वरूप में स्थिर भाव स्वयं में स्थिर भाव मिल जाता है तो आत्मा का ही आधिपत्य उसमें प्रवाहित हो जाता है। यही अध्यात्म है, अध्यात्म की पराकाष्ठा है।[3]

'स्वो भावः स्वभावः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अपने ही भाव का नाम स्वभाव है। जीवरूपा भगवान की चेतन परा प्रकृतिरूप आत्मतत्व ही जब शरीर, इंद्रिय, मन-बुद्ध्यादि रूप अपरा प्रकृति का अधिष्ठाता हो जाता है, तब उसे अध्यात्म कहते हैं।[4]

उसी परब्रह्म का जो प्रत्येक शरीर में अंतरात्मभाव है, उसका जो स्वभाव है, वह स्वभाव ही 'अध्यात्म' कहलाता है। अभिप्राय यह कि शरीर को आश्रय बनाकर जो आत्मा अंतरात्मभाव से उसमें रहनेवाला है और परिणाम में जो परमार्थ ब्रह्म ही है, वही तत्व स्वभाव है उसे ही अध्यात्म कहते हैं अर्थात् वही अध्यात्म नाम से कहा जाता है।[5]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि गीता के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप, ब्रह्म का स्वभाव अर्थात् आत्मा ही अध्यात्म नाम से जाना जाता है। यह आत्मा नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य और विकाररहित है।

न जायते म्रियते व कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वान भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

यह आत्मा वास्तव में न तो किसीको मारता है और न किसीके द्वारा मारा जाता है। यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाल ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।[6]

नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग जला नहीं सकती, इसको जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता।[7]

गीता को उपनिषदों का सार ही कहा गया है। इसमें उपनिषद् के सत्य की सरल एवं प्रभावशाली विधि से व्याख्या की गयी है।

उपनिषद् में बताया गया है कि परमतत्व एक अद्वैत रूप है, जिसे बाह्य दृष्टि से ब्रह्म और आंतरिक दृष्टि से आत्मा कहते हैं। ये एक ही परम तत्व के दो नाम हैं। आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप सत्, चित्, आनंद है। जन्म-मरण, रोग-विनाश आदि सभी शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं।[8]

आत्मा अजर, अमर, चैतन्य, निर्विकार तत्व है। जिसे हम शरीर को लक्षित करके 'मैं' कहते हैं उससे यह सर्वथा पृथक तत्व है। भौतिक शरीर में रहते हुए भी यह उससे यथा मन, बुद्धि एवं इंद्रियों से अलग है।

उपनिषदों में आत्मा को चेतन स्वरूप बताया है। माण्डूक्य उपनिषद् में इसे तुरीय या शुद्ध चैतन्य कहा गया है। किंतु इस चेतना की तीन अन्य अवस्थाओं का भी उल्लेख है। इस प्रकार आत्मा की 4 अवस्थायें हैं :

1 जाग्रत : यह बाह्य जगत के अनुभव की अवस्था है।

2 स्वप्न : यह चेतना की दूसरी अवस्था है। इसमें आत्मा स्वप्न में निमग्न रहती है।

3 सुषुप्ति : यह गहरी नींद की अवस्था है। जहाँ न बाह्य जगत के पदार्थ होते हैं न आंतरिक जगत के अर्थात स्वप्न के पदार्थ होते हैं।

4 तुरीय : इस अवस्था में आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में रहती है। आत्मा का पूर्ण स्वरूप, असली स्वरूप इस चौथी अवस्था अर्थात् तुरीयावस्था में मिलता है। आत्मा की यह अवस्था ब्रह्म ही है।

चार अवस्थाओं के अतिरिक्त उपनिषदों में आत्मा के पंच कोषों का भी उल्लेख हुआ है। वे पंच कोष हैं :

1 अन्नमय कोष : अन्न पर आश्रित रहनेवाला शरीर यह आत्मा का स्थूल आवरण है। अन्नमय कोष ही शरीर कहलाता है।

2 प्राणमय कोष : प्राण पर आश्रित यह कोष शरीर के भीतर रहता है।

3 मनोमय कोष : प्राणमय कोष के भीतर मनोमय कोष रहता है जो स्वार्थमय इच्छाओं का पुंज है और उसकी पूर्ति हेतु शरीर पर निर्भर रहता है।

4 विज्ञानमय कोष : मनोमय कोष के भीतर विज्ञानमय कोष का निवास है जो बुद्धि पर आश्रित है।

5 आनंदमय कोष : यह कोष विज्ञानमय कोष के भीतर रहता है। वस्तुतः यही विशुद्ध आत्मा है। सच्चे आनंद का स्रोत है। तैत्तरीय उपनिषद कहती है : 'आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्।' अर्थात् आनंद को ही ब्रह्म जानो।

उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की एकता का जगह-जगह उल्लेख है : **अहं ब्रह्मास्मि।** अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ। **तत्वमसि** अर्थात् तू वही ब्रह्म है **अयमात्मा ब्रह्म** अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्म है।[9]

उपनिषदों में बताया गया है कि आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। किंतु जीव अपने को परमात्मा से भिन्न मानकर संसार चक्र में उलझता चला जाता है। परंतु जब उसे आत्मा-परमात्मा की अभिन्नता का ज्ञान हो जाता है तब वह अमरत्व को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है जो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म हो जाता है।[10]

मानव जीवन के चार पुरुषार्थ : धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं। जहाँ मोक्ष का वास्तविक अर्थ ही है आत्मसाक्षात्कार। यह मानव जीवन का परमलक्ष्य है। इस अनुभव के लिए उपनिषद् तीन साधनों का उपदेश देती है : श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन। आत्म तत्व का श्रवण करना चाहिए श्रुति वाक्यों से,

मनन करना चाहिए तार्किक युक्तियों से तथा निदिध्यासन करना चाहिए योग-प्रतिपादित उपायों के द्वारा। अष्टांग योग निदिध्यासन का ही उपाय है। ध्यान के द्वारा जब तक आत्मा का स्वानुभव नहीं होता, तब तक श्रवण तथा मनन का उपयोग ही क्या है ?[11]

वेदांत दर्शन को भारतीय अध्यात्मशास्त्र का मुकुटमणि माना जाता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मा के अस्तित्व के विषय में शंका करने की तनिक भी जागह नहीं है। यह उपनिषदों का ही तत्व है। याज्ञवल्क्य ने बहुत पहले कहा था कि जो सब किसीको जाननेवाला है उसे हम किस प्रकार जान सकते हैं? सूर्य के प्रकाश से जगत प्रकाशित होता है पर सूर्य को क्यों कर प्रकाशित किया जा सकता है ? इसी कारण प्रमाणों की सिद्धि का कारणभूत आत्मा किसी प्रमाण के बल पर कैसे सिद्ध किया जाये ? आत्मा की सत्ता स्वयं सिद्ध होती है।

आत्मा ज्ञानरूप है और ज्ञाता भी। ज्ञाता वस्तुतः ज्ञान से पृथक नहीं होता। ये दो भिन्न-भिन्न वस्तु नहीं, एक ही है। जगत में नानात्व या अनेकता देखना मृत्युरूप है। कठोपनिषद् का स्पष्ट कथन है कि वह मृत्यु को प्राप्त होता है जो इस संसार में अनेकता को देखता है। एकता का दर्शन अमरत्व है, अनेकता का ज्ञान मृत्यु।

आत्मा के संदर्भ में यही बात आद्य शंकराचार्यजी भी कहते हैं कि **जीवोब्रह्मैव नापरः** अर्थात् जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। वे कहते हैं जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव प्रकाश, जल का शीतलता और अग्नि का उष्णता है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव सच्चिदानंद है। अर्थात आत्मा सत्, चित् एवं आनंदस्वरूप है।

सत् स्वरूप : इसका अर्थ है आत्मा अस्तित्ववान है। आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता। कोई यह नहीं कहता है कि मैं नहीं हूँ। यह आत्मा सत् अर्थात नित्य और अविनाशी है।

चित् स्वरूप : चेतना आत्मा का स्वरूप है कोई आगंतुक गुण नहीं। ब्रह्म के समान आत्मा विशुद्ध चेतना है। आत्मा का यह चित् स्वरूप प्रत्येक अवस्था में जैसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में विद्यमान रहता है।

आनंद स्वरूप : आत्मा परमात्मा के समान ही आनंद स्वरूप है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि यदि आत्मा आनंद स्वरूप है तो संसार में दुःख क्यों है ? शंकराचार्य इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि अविद्या अथवा अज्ञान के कारण ही समस्त प्रकार के दुःख होते हैं। हम अपने वास्तविक रूप 'मैं' को, ब्रह्म को, आत्मा को नहीं जानते एवं मरनेवाले शरीर को 'मैं' मान लेते हैं यही अज्ञान है। इसी अज्ञान के कारण हम अपने को जीवरूप में पाते हैं और सुख-दुख, हानि-लाभ, जीवन-मरण के द्वन्दवों से ग्रस्त होकर आवागमन के चक्र में फँसे रहते हैं।

इस अज्ञान की निवृत्ति आत्मज्ञान द्वारा होती है अर्थात् अध्यात्म द्वारा होती है। आद्य शंकराचार्य कहते हैं जिस प्रकार रोग की निवृत्ति होने पर स्वस्थता प्राप्त होती है उसी प्रकार दुःखी व्यक्ति को ज्ञान के द्वारा द्वैत प्रपंच का शमन होने पर स्वस्थता की प्राप्ति होती है।[12]

आत्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर लेने पर व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किन्तु शांकर दर्शन में यह बात उल्लेखनीय है कि मोक्ष की प्राप्ति कोई नयी प्राप्ति नहीं है, क्योंकि आत्मा नित्य मुक्त ही है। मुक्ति में व्यक्ति केवल अपने भूले हुए स्वरूप को पहचान लेता है। इसलिए इसे प्राप्त की प्राप्ति कहा गया है।

मुक्ति के लिए शंकराचार्य ज्ञान को ही एकमात्र साधन मानते हैं, किंतु साधक के लिए साधन-चतुष्टय को आवश्यक बतलाते हैं। साधन चतुष्टय हैं :

1 विवेक : नित्यानित्य वस्तु विवेक।

2 वैराग्य : इस लोक और परलोक के भोगों की इच्छा न होना।

3 षट् संपत्ति : षट् संपत्ति निम्नानुसार हैं :

शम : मन को वश में रखना।

- दम : आँख आदि इंद्रियों को वश में रखना।
- उपरति : अपने धर्म का पालन करना।
- तितिक्षा : सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी आदि सहन करने का सामर्थ्य।
- श्रद्धा : गुरु और वेदांत वाक्यों में विश्वास रखना।
- समाधान : चित्त की एकाग्रता।

4 मुमुक्षत्व : मोक्ष की तीव्र इच्छा होना।

उपर्युक्त चार साधनों से संपन्न मुमुक्षु तत्वज्ञान के अधिकारी होते हैं। तत्वज्ञान अर्थात् आत्मतत्व का ज्ञान पाकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। यही मोक्ष भारतीय दर्शन एवं धर्म का अंतिम लक्ष्य है।

इस प्रकार अध्यात्म से तात्पर्य आत्मा से है। वह आत्मा जो नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, अजर है, अमर है, अविनाशी है। जो जीव का वास्तविक स्वरूप है। किंतु आत्मा को 'मैं' न मानकर जीव शरीर को ही 'मैं' मानने लगता है यही उसकी सबसे बड़ी भूल है, यही अज्ञान है, जिसके कारण जीव जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर अनेक कष्ट झेलता है। इसी अज्ञान के कारण वह नित्य होते हुए भी अपने को अनित्य मानने लगता है। अजर-अमर होते हुए भी स्वयं को वृद्ध एवं मरणशील मानने लगता है। किंतु जब उसे अपने वास्तविक स्वरूप का अर्थात् आत्मरूप का ज्ञान होता है तो उसके सारे संशयए भय, भ्रम मिट जाते हैं। वह जान लेता है कि वह नहीं जनमता, शरीर जनमता है। वह नहीं मरता, शरीर मरता है। वह बूढ़ा नहीं होता, शरीर बूढ़ा होता है। वह रोगी नहीं होता, शरीर रोगी होता है। वह तो जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि से परे है। वह तो शुद्ध-बुद्ध चैतन्य आत्मा है। इस बात को वास्तविकता में जान लेना ही आत्मा को जान लेना है, अध्यात्म को जान लेना है।

संदर्भ ग्रंथ

1 उमेशचंद्र दुबे श्री अरविंद संस्कृति दर्शन पृष्ठ 17

2 आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखंभा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1984, पृष्ठ 9

3 स्वामी अड़गड़ानंद यथार्थ गीता, पृष्ठ 219

4 जयदयाल गोयन्दका, श्रीमद्भगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी-टीका, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2076, पृष्ठ 380

5 हरिकृष्णदास गोयनका, श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य हिंदी अनुवाद सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत 2046, पृष्ठ 212

6 श्रीमद्भगवद्गीता, 2.20

7 श्रीमद्भगवद्गीता 2.23

8 श्री सतीशचंद चट्टोपाध्याय एवं श्री धीरेंद्र मोहन दत्त, भारतीय दर्शन, पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस पटना 1994, पृष्ठ 32

9 डॉ. शोभा निगम, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पृष्ठ 41

10 मुण्डकोपनिषद 2.2.8

11 आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, चौखंभा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1984, पृष्ठ 14, 15

12 मांडूक्यकारिका भाष्य, भूमिका